

भारत में अधिकतर कृषकों के लिये कृषिजीवन-नरिवाह का एक सक्षम स्रोत नहीं रही है ।

एक प्रतष्ठिति पत्रिका का पत्रकार कृषि की स्थिति का जायज़ा लेने के लिये गाँवों में किसानों के बीच जाता है तथा उनसे बतौर सर्वे एक प्रश्न पूछता है कि आप अपने बच्चे को भविष्य में क्या बनाना चाहते हैं? प्राप्त उत्तर बहुत चौकाने वाला होता है । एक ऐसे देश में जहाँ कृषिमात्र एक आर्थिक व्यवसाय व रोज़गार का प्रश्न न होकर लोगों की संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था तथा आस्था से जुड़ा मामला है, जहाँ कृषकों की फसलों के हिसाब से त्योहारों का निर्धारण होता है तथा कवियों की कल्पना में इसके स्वर्णमि दौर के गीत वदियमान हैं, वहाँ 40% किसान अपने बच्चे को किसानों के धंधे को नहीं अपनाने देना चाहते! उनके अनुसार वकिल्प के रूप में वे बच्चे को कोई भी सम्मानजनक कार्य करने की सहमति देंगे, लेकिन खेती-किसानी की नहीं! किसानों का यह उत्तर एकबारगी चौकाता ज़रूर है; लेकिन कोई भी प्रबुद्ध संवेदनशील व्यक्ति भारत में कृषि की स्थिति को देखेगा तो संभवतः यही उत्तर देगा । कृषकों में लगातार बढ़ती आत्महत्या की प्रवृत्ति भारत में कृषि के जीवन-नरिवाह के बेहतर साधन न रह जाने की तस्दीक ही करती है । यह वडिंबना इसलिये भी ज़्यादा वीभत्स महसूस होती है क्योंकि भारत ही वह देश है जहाँ 'भूमि' को 'माँ' का दर्जा दिया गया है, जहाँ हर प्रकार की जलवायु उपलब्ध है, जहाँ हर प्रकार की फसल को समर्थन देने वाली मट्टि है, नदियों का इतना वसितृत संगम है जो सचिआई की आवश्यकता को पूरा कर सकता है और पर्वत, पठार, तटीय मैदान, डेल्टा आदि भी यहाँ हैं जिनमें हर प्रकार की फसल का उत्पादन हो सकता है । एक ऐसा वशाल मानव श्रम भी यही है जो कृषि से संबंधित पारंपरिक ज्ञान रखता है तथा इसके साथ ही उत्पादन को खपाने के लिये वशाल बाज़ार की भी यहाँ उपलब्धता है । कर्वा ने इसी वजह से 'भारत' को 'खेत' का पर्याय माना है-

"भारत.....

मेरे सम्मान का सबसे महान शब्द
जहाँ कहीं भी प्रयोग किया जाए
बाकी सभी शब्द अर्थहीन हो जाते हैं
भारत का अर्थ
किसी दुष्यंत से संबंधित नहीं
वरन् खेत में दायर है
जहाँ अन्न उगता है ।"

ऐसे में मन में कुछ प्रश्नों का उठना लाजमी है, मसलन ऐसे कौन से लक्षण हैं जो भारत में कृषि के जीवन-नरिवाह के सक्षम स्रोत न रह जाने की पुष्टि करते हैं? क्या कृषि की यह दशा भारत में ही है? क्या सभी कृषकों की ऐसी ही स्थिति है? या इसमें भी छोटे-बड़े कृषक, ज़मींदार-रैयत व मजदूरों की स्थिति अलग-अलग है? जब कुछ बड़े किसान आज भी कृषि से लाखों रुपए कमा रहे हैं तो बाकी के लिये यह दुःखदायी साधन क्यों है? कृषि का जीवन नरिवाह का स्रोत न रह जाना क्या वर्तमान की स्थितियों का परिणाम है या कृषि की नयित हिमेशा से ही ऐसी रही है? मूल प्रश्न यह है कि कृषि की स्थिति ऐसी क्यों है? क्यों कृषि 'प्राणदायिनी' से 'मौत का औजार' बन गई है? क्यों आज किसान के बारे में सोचते हुए वही समृत्ति ताज़ा हो आती है जो परमचंद ने 'होरी' का वर्णन करते हुए लिखी थी? क्यों पढ़-लिख जाने को किसानों से दूर जाने का पर्याय माना जाता है? और अंततः कृषि की यह स्थिति किब व कैसे सुधरेगी? इन प्रश्नों की तह तक जाकर ही हम इस मुद्दे की मूल ज़रूरत के साथ न्याय कर पाएंगे ।

वर्तमान में, भारत में लगभग 50% प्रत्यक्ष व 70% अप्रत्यक्ष रूप से लोगों के जीवन-नरिवाह का साधन कृषि है । ये लोग कृषि के अंतर्गत फसल उत्पादन के अलावा पशुपालन, बागवानी, मत्स्यपालन, रेशम उत्पादन, वन-वर्द्धन आदि क्रियाओं को संपन्न करते हैं, परंतु इनमें से अधिकांश व्यक्ति इनके माध्यम से एक सम्माननीय व गरिमापूर्ण जीवन जीने हेतु आवश्यक अवयवों को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं । इस वर्ग की शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशिक्षण, बेहतर आवास व अवसर आदि तक पहुँच अभी भी दूर बन गई है । ज़्यादा चिंतिनीय बात तो यह है कि किसानों का एक बड़ा वर्ग कृषि के माध्यम से जीवन-नरिवाह भी नहीं कर पा रहा है तथा आत्महत्या द्वारा जीवन समाप्त करने के लिये अभिशप्त है । निश्चित तौर पर कृषक वर्ग में एक समूह ऐसा भी है जो किसानों के माध्यम से शो-आराम का जीवन जी रहा है तथा जिसके लिये कृषि जीवन-नरिवाह का साधन होने की बजाय एक लाभप्रद व्यवसाय है; परंतु ऐसे लोग अपवाद की संख्या में ही हैं; अधिकांश लोगों के लिये कृषि अस्तित्व का ही प्रश्न बनी हुई है । अपवादस्वरूप जो लोग कृषि के माध्यम से सम्माननीय व आर्थिक रूप से लाभप्रद जीवन जी रहे हैं वे उस समूह से संबंधित हैं जो या तो कर बचाने के लिये कृषक का लबादा ओढ़े हुए हैं या जनिके लिये कृषिमात्र एक अल्पकालिक पेशा है । भूमि का बड़ा स्वामित्वधारी कृषक वर्ग, जो विभिन्न योजनाओं व उपकरणों का बेहतर प्रयोग कर पा रहा है, के लिये ही कृषि जीवन-नरिवाह का सक्षम स्रोत बनी हुई है ।

ऐतिहासिक रूप से भी कृषि से जुड़े लोगों के लिये यह कोई वैभव का साधन नहीं रही है; कर में अधिकतम भागीदारी होने के बावजूद प्राचीन व मध्यकाल में कृषि से जुड़े लाभ कभी भी बहुसंख्यक किसानों को प्राप्त नहीं हुए । इनका अधिकतम हिस्सा बचौलियों व शासक वर्ग ने हड़प लिया । औपनिवेशिक काल में तो पूरा शोषण तंत्र कृषकों की बदहाली पर ही टिका था तथा कृषकों के अधिशेष को सोखकर ही ब्रिटन के साम्राज्य को ऊर्जा प्राप्त होती थी ।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में कृषि का इतना महत्त्व होने के बावजूद यह आज भी बहुसंख्यक कृषकों के लिये जीवन-नरिवाह का सक्षम स्रोत नहीं है । चूँकि, कृषि की उत्पादकता व सशक्तता भूमि, मृदा, जल, जलवायु, तापमान व वर्षण जैसे पर्यावरणीय व भौतिक घटकों; भूमिसुधार, सचिआई, संकर बीज, ऊर्जा, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, तकनीक एवं मशीनीकरण जैसे आर्थिक कारकों तथा राजनीतिक इच्छाशक्ति व प्रशासनिक दक्षता एवं ईमानदारी आदि जैसे अन्य कारकों

पर नरिभर है, अतः इसकी संवेदनशीलता बढ़ जाती है। कृषि की यह संवेदनशीलता ज़्यादा गहराई से इसलिये भी चर्चा का विषय बनती है क्योंकि भारत के लिये कृषि का महत्त्व न केवल खाद्य सुरक्षा, रोज़गार, ग्रामीण विकास, उद्योगों के लिये कच्चे माल, नरियात संवर्द्धन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है वरन् यह महिला सशक्तिकरण, गरीबी निवारण, धारणीय विकास को भी सुनिश्चित करने वाला प्रमुख कारक है।

वर्तमान में कृषि के जीवन-नरिवाह के बेहतर स्रोत न रह जाने के कारणों पर चर्चा करें तो स्पष्ट होगा कि इसके लिये कोई एक प्रमुख कारण ज़मिमेवार न होकर एक पूरी शृंखला ही दोषी है। कृषि की कम उत्पादकता, सचिाई के लिये मानसून पर नरिभरता, सार्वजनिक नविश की गुणवत्ता का कमज़ोर होना; ऊर्जा, परिवहन, भंडारण व वितरण के क्षेत्र में आधारभूत ढाँचे का पछिड़ापन, कृषि साख की समस्या, दोषपूर्ण न्यूनतम समर्थन प्रणाली, भूमि सुधार की समस्या, तकनीक कौशल का अभाव आदिकारणों ने आज इसे एक लाभप्रद व्यवसाय में परिवर्तित नहीं होने दिया है। इन्हीं कारणों के आलोक में हम कृषि की दुर्दशा को समझ सकते हैं; यही वजह है कि कृषि आज सामान्यतः नकारात्मक कारणों से ही चर्चा का विषय बनती है, फरि वह चाहे कृषक आत्महत्या का मामला हो या कृषकों द्वारा ऋण-माफी हेतु नरितर प्रदर्शन का मसला। कृषकों द्वारा अपनी उपज को सड़क पर फेंकना हो या कृषि नीतियों में प्रशासनिक अकरमण्यता, ये खबरें भी आमफहम हैं। यही परस्थितियाँ इस बात का सूतर देती हैं कि कियों कृषक आज मज़दूर बन एक नारकीय शहरी जीवन जीने में खुश है, लेकिन वह कृषि को अपना पूर्णकालिक पेशा नहीं बनाना चाहता! कृषि की इसी दयनीय स्थिति के लिये ही कवि ने लिखा है-

“उनहें धर्मगुरुओं ने बताया था प्रवचनों में
आत्महत्या करने वाला सीधे नरक जाता है
तब भी उनहोंने आत्महत्या की
क्या नरक से भी बदतर हो गई थी उनकी खेती।”

ऐसा नहीं है कि सरकारी सूतर पर इस स्थिति को बदलने के प्रयास नहीं हो रहे हैं। सरकार कृषि के माध्यम से देश की आर्थिक प्रगति को तीवर करने तथा इसका लाभ अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाने के लिये राष्ट्रीय कृषि नीति, राष्ट्रीय किसान नीति, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, प्रधानमंत्री कृषि सचिाई योजना, जैविक कृषि के लिये परंपरागत कृषि विकास योजना, मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना, ई-नाम, राष्ट्रीय खाद्य प्रसंस्करण मशिन, नीली क्रांति की केंद्रीय योजना तथा राष्ट्रीय गोकुल मशिन आदिके माध्यम से प्रयास कर रही है। परंतु कृषक जागरूकता व शिक्षा का अभाव, सरकारी हीलाहवाली व भ्रष्टाचार तथा कृषि के राज्य सूची का विषय होने के कारण समन्वय के अभाव ने इन प्रयासों को अपनी परणित पर नहीं पहुँचने दिया है।

कृषि बहुसंख्यक कृषकों के लिये न केवल जीवन-नरिवाह का स्रोत वरन् देश की जीवन-रेखा व सफल उद्यम के रूप में स्थापित हो, इसके लिये बहुत कुछ किया जाना शेष है। सर्वप्रथम, कृषि के लिये एक समग्र व एकीकृत रणनीति की आवश्यकता है, जिसके लिये कृषि को समवर्ती सूची का विषय बनाने का सुझाव भी प्रस्तुत किया जाता है। साथ ही, भूमि पट्टेदारी संबंधी कानूनों में सुधार, सार्वजनिक-नजिी मॉडल के द्वारा भंडारण, विपणन, संचार, सड़क, बाज़ार संबंधी अवसंरचना का विकास, सचिाई प्रबंधन तथा जलवायु परिवर्तन आधारित बीमा योजना का विकास, गुणवत्तापूर्ण बीज, उर्वरक व कीटनाशकों का विकास, सरल व सस्ती तकनीक को बढ़ावा तथा दक्ष आपूर्ति शृंखला का विकास जैसे क्षेत्रों में ईमानदारीपूर्वक क्रियान्वयन कर कृषि को लाभकारी बनाया जा सकता है। इसके अलावा, उत्तर-पूर्व क्षेत्र की कृषि क्षमता का दोहन, न्यूनतम समर्थन मूल्य को लाभकारी बनाकर, ई-मंडी, ई-बाज़ार, ई-सूचना आदिको सुवर्धनक रूप से बढ़ावा देकर तथा मत्स्यपालन, पशुपालन, मधुमक्खी पालन आदिका प्रशिक्षण व सबसिडियुक्त ऋण देकर तथा वैकल्पिक रोज़गार द्वारा आय को बढ़ावा देकर भी कृषि कृषक दोनों को एक सम्माननीय मुकाम हासिल हो सकता है जो अंततः राष्ट्र की प्रगति में सहायक होगा।

अतः नषिकर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि इसमें कोई दो राय नहीं कि भारत में कृषि जीवन-नरिवाह का एक सक्रम स्रोत नहीं रही, लेकिन इसे 'कृषि के अंत' की उद्घोषणा के रूप में न देखकर कृषि की गरिती स्थिति के रूप में ही स्वीकार करना चाहिये तथा सरकार, समाज, प्रशासन व व्यक्ति सभी के सूतर पर विभिन्न सुधारों को लागू कर इसको आजीविका के एक सक्रम साधन के साथ-साथ समाज की संवर्धन नरिधारण करने वाले एक महत्त्वपूर्ण अवयव के रूप में स्थापित करना चाहिये।

“हम न रहेंगे, तब भी तो ये खेत रहेंगे
इन खेतों पर घन लहराते शेष रहेंगे
जीवन देते प्रयास बुझाते
श्याम बदरिया के, लहराते केश रहेंगे।”